P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-5* (Part-1) August- 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

नाथद्वारा : कला व तीर्थाटन

दिनेश कुमार वर्मा
सहायक आचार्य,
कला विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
बून्दी, राजस्थान

सारांश

पर्यटन स्थल उदयपुर से 50 किलो मीटर की दूरी पर स्थित वल्लभ सम्प्रदाय की मुख्यपीठिका नाथद्वारा में श्री नाथजी का मन्दिर और यहाँ की कला पर्यटकों को आकर्षित करती रही है। यह स्थल रसानुकूल कला और मनमोहित वातावरण एवं कृष्ण भक्ति के लिए प्रसिद्ध है। वैष्णव धर्म की परम उपासना और सांस्कृतिक विचारधारा एवं कृष्ण लालित्य का अनुराग यहाँ लोगों के रग–रग में विद्यमान है। मूलतः, मथुरा से प्रचारित वल्लभ सम्प्रदाय की धार्मिक मान्यता मेवाड़ क्षैत्र के नाथद्वारा में विकसित हुई। इस पारम्परिक विचारधारा का कला पर प्रभाव पड़ा और कला ने उसको सार्थकता प्रदान कर अग्रसर किया। समाज में वैष्णव धर्म के प्रचार–प्रसार के लिए कलाओं का सहारा लिया और कला ने धर्म के गूढ़तम रहस्यों और लक्षणों को अर्थ निरूपण में सहयोग देकर सामाजिक विचारधारा को अग्रसर किया। कला समाज में संवाद का माध्यम बनी तो स्वाभाविक है कि समयानुकूल रचना कौशल और रूप परिवर्तित होते रहे। वल्लभ सम्प्रदाय की उत्प्रेरणा से कला सृजन का दायरा बढ़ा एवं कला की नित–नवीन तकनीकी के साथ कृष्ण विषयगत चित्रों की बहुलता भी। इस प्रकार समाज में धार्मिक विचारधाराओं के तहत कृष्ण लीलाओं एवं कृष्ण चरित्र पर आधारित रूपाकारों को चित्रित करना कला के विषय बने। कपड़े पर पारम्परिक तरीके से बनने वाली कला पिछवाई नाथद्वारा की मौलिक देन है। मूलतः पिछवाइयाँ श्रीनाथजी के उत्सवों तथा कृष्ण लीलाओं के विषयगत रूपों के लिए समयानुकूल तैयार की जाती है। निःसंदेह, मेवाड़ शैली में वल्लभ सम्प्रदाय की प्रेरणा से सृजित नाथद्वारा की कला अद्भुत एवं आध्यात्मिक है जो सदियों से सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराओं की वाहक बनी हुई है।

तीर्थाटन मूलतः धार्मिक लाभों के कारण यात्रा करना माना जाता है। नाथद्वारा की तीर्थ पर्यटन कला के बारे में यह कहना मुनासिब होगा कि यहाँ की तीर्थ पर्यटन कला की हर छोटी–बड़ी चीज से पर्यटन का रिश्ता कायम करने की कोशिश रही है। पर्यटन, कला और धर्म स्थल का घनिष्ठ संबंध रहा है। मूलतः लोगों के मन में धर्म की आस्था और विचारधारा उन्हें तीर्थ स्थल की ओर आकर्षित करती है। कला का आकर्षण और कृष्ण के प्रति दर्शनार्थियों की आस्था से पर्यटन को बढ़ावा मिला जिससे रोजगार के अवसर भी सुलभ होने लगे। अतः यह कहना सार्थक होगा कि पर्यटन व्यवसाय से सामाजिक और आर्थिक लाभ उत्पन्न होते हैं।

मुख्य शब्द : तीर्थाटन, पर्यटन व्यवसाय व इससे जुड़े उद्योग, धार्मिक, सामाजिक व सांस्कृतिक विचारधारा, वैष्णव सम्प्रदाय, कृष्ण चरित्र, कृष्ण–राधा, धार्मिक चित्रों का अंकन, भित्ति चित्र, ग्रन्थ चित्र, पिछवाइयाँ, कला की रचनात्मकता, नाथद्वारा शैली के प्रमुख कलाकार आदि।

प्रस्तावना

भारतीय समाज में कला को मानव जीवन का अभिन्न अंग माना जाता है। कला ने मानव का संस्कार कर उसे आगे बड़ने में सहयोग किया। भारत में बड़े–बड़े मन्दिर हिन्दू संस्कृति के प्रतीक है। नाथद्वारा का मन्दिर और यहाँ की कला भारतीय सांस्कृतिक विचारधारा को दर्शाती है।

अध्ययन का उद्देश्य

भारतीय संस्कृति के अनुरूप वैष्णव धर्म की परम उपासना का समाज में बड़ा महत्व रहा है। समाज में वैष्णव धर्म के प्रचार–प्रसार के साथ कला ने धर्म के गूढ़तम रहस्यों और लक्षणों को अर्थ निरूपण में सहयोग देकर अग्रसर किया। इस रूप में नाथद्वारा की कला और वैष्णव धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। मूलतः यह स्थल स्थानीय कला और तीर्थाटन के लिए प्रसिद्व है। इस रूप में मेरा मंतव्य नाथद्वारा की कला और तीर्थाटन विषय को रेखांकित करने का रहा। नाथद्वारा शैली में पारम्परिक और धार्मिक विचार–धारा के साथ–साथ कृष्ण

चरित्र, कृष्ण भक्ति, कृष्ण लीलाओं, राधा–कृष्ण के विषयगत चित्रों, भित्ति चित्र, ग्रन्थ चित्रण, पिछवाइयाँ, और प्रमुख कलाकारों की रचनात्मकता के साथ–साथ तीर्थ पर्यटन स्थल व इससे जुड़े व्यवसाय आदि को आलोकित करना रहा। अतः इस शोध प्रपत्र में उक्त विचारों का एक संक्षिप्त रूप में अध्ययन किया गया है। जो तीर्थाटन स्थल और वैष्णव सम्प्रदाय की उत्प्रेरणा से सृजन कर्म को निर्विवाद रूप से सत्यता के साथ दर्शाता है।

संस्कृति ने कला को जन्म दिया, अथवा कला ने संस्कृति को विकास के पथ पर अग्रसर किया, यह विचारणीय है। कला मानव संस्कृति का मूर्त–अमूर्त स्वरूप है। कला और संस्कृति पर धार्मिक विचारधारा एवं पारम्परिक व स्थानीय वातावरण का स्पष्ट प्रभाव पड़ता रहा। मूलतः प्राचीन समय से ही भारतीय समाज में कला और सांस्कृतिक समृद्धता से निहित विचारधारा पर्यटकों को अपनी ओर आकर्षित करती रही है। यह सभ्यता हमारे धार्मिक स्थलों, रीति–रिवाजों, रहन–सहन और कला में आज भी विद्यमान है। नाथद्वारा की कला, आस्थावान विचारधारा और रीति–रिवाज तीर्थ यात्रियों को बहुत पसंद है। यहाँ देश–विदेश से अनेक पर्यटकों और दर्शनार्थियों के आने से रोजगार के अवसर भी बढ़ने लगे हैं। भारत की धार्मिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नता का लाभ धार्मिक पर्यटन के विकास में उठाया जा सकता है। यह रोजगार के अवसरों में वृद्धि तथा अप्रत्यक्ष रूप से विदेशी मुद्रा की आय में बढ़ोत्तरी कर सकता है। सांस्कृतिक एवं धार्मिक समारोहों का सुन्दर ढंग से अयोजन विदेशी पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बन सकता है।[1] नाथद्वारा के मन्दिर में भारतीय सांस्कृतिक विचारों के अनुरूप श्रीकृष्ण के विविध रूपों की झाकियाँ सजाकर समयानुकूल पूजा पाठ की जाती है। ईट और चूने से बने इस मन्दिर में पुजारियों द्वारा शास्त्रीकृत विधि से किए जाने वाले पूजा पाठ और मंगल, ग्वाल, राजभोग, संध्या, शयन आदि की भगवान कृष्ण की मनोहारी झांकियों के दर्शन देखने सुदूर देशों से श्रद्धालू आते हैं।[2] सांस्कृतिक पर्यटन का मूलाधार हमारी वह सांस्कृतिक विचारधारा है जिसके प्रवाह में मानव सामाजिक विचारों और अवधारणओं के प्रवाहमान में जीवन यापन करता है। इस रूप में पर्यटन का अर्थ व्यापक स्वरूप को दर्शाता है वहीं, पर्यटकों की यात्रा बहुउद्देश्य विचारों को आलोकित करती है। डॉक्टर जेभिड्डिन के कथानानुसार, ''यह एक सामाजिक आन्दोलन है ताकि आराम, विनोद क्रीड़ा व सांस्कृतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि हो सके।''[3] नाथद्वारा की संस्कृति यहाँ की विभिन्न कलाओं में अभी भी जीवन्तता लिए हुए हैं। पर्यटक सामाजिक सरोकारों से रूबरु तो होते हैं, साथ ही कलामय वातावरण से मनमोहित भी हो जाते हैं। नाथद्वारा में अनेक धर्मशालाओं, आधुनिक सुख–सुविधाओं से सम्पन होटलों, पोषण युक्त भोजन, पीने के पानी की सुविधा, विद्युत आपूर्ति, श्रीनाथजी का बाजार एवं सार्वजनिक सुविधाओं की उपलब्धता पर ध्यान दिया गया है। यहाँ पर्यटकों के लिए परिवहन, यात्रा–संचालकों, डाक सेवा, बैंक आदि मुलभूत सुख–सुविधाएँ उपलब्ध है। पर्यटन के तीन मुख्य अंग– स्थान, परिवहन एवं आवास है। पर्यटक को किसी भी गंतव्य स्थान पर पहुँचने के लिए यात्रा–अभिकर्ता व यात्रा–संचालकों, सामान–वाहक आदि की सेवाओं की आवश्यकता होती है।[4] नाथद्वारा से 50 किलो मीटर दूर उदयपुर में रेल व हवाई सेवा भी उपलब्ध है। मूलतः उदयपुर पर्यटन नगरी है इसलिए आस–पास के सभी क्षैत्र यहाँ से जुड़े हुए हैं।

पर्यटन का अर्थ लोगों के एक स्थान से दुसरे स्थान पर कई उद्देश्य से यात्रा करना, कुछ समय या कुछ दिन उस स्थान पर व्यतीत करना भी माना जाता है। सन् 1942 में हुण्जीकर और क्राफ्ट (Hunziker and krapt) ने बताया कि पर्यटन अनिवासी लोगों के ठहरने और यात्रा करने सम्बन्धी विशेषताओं का कुल योग है। यह अनिवासी न तो दर्शनीय स्थल पर स्थायी रूप से रहते हैं, और न कोई मुद्रा कमाने का कार्य करते हैं।[5] नाथद्वारा में पर्यटकों का आगमन वर्ष भर रहता है, परन्तु जन्माष्टमी के कुछ दिन पहले से मार्च तक यहाँ इनकी अवाजाही अधिक रहती है।

तीर्थाटन और कला का धार्मिक महत्व

तीर्थाटन का अर्थ पवित्र स्थान की यात्रा। धार्मिक यात्रा के मूल में पाप से मुक्ति, ईश्वर को प्रसन्न करना, मनोकामना पूर्ण करना, संकट के समय रक्षा करना ऐसी अनेकानेक इच्छा या फल की प्राप्ति है। भारत में धार्मिक यात्रा का उद्देश्य मोक्ष की भावना और कला का आनन्द। बहरहाल, तीर्थाटन का आधुनिक रूप पर्यटन को माना जाता है। मानव मन की आस्थवान विचारधारा के तहत पर्यटक धार्मिक स्थल की यात्रा करते हैं जिससे उनको सुकून मिलता है साथ ही रोजगार के अवसर भी सुलभ होते हैं। देश में सबसे अधिक धार्मिक पर्यटन से रोजगार पैदा हो रहे हैं। देशी पर्यटक तो अपनी धार्मिक भावनाओं के चलते धार्मिक स्थलों का भ्रमण करते हैं, परन्तु विदेशी पर्यटक इन स्थलों पर शान्ति की तलाश में आ रहे हैं।[6] पर्यटकों और दर्शनार्थियों की यात्रा सुगम बनाने हेतु कला, तीर्थाटन और संस्कृति को डोर–टू–डोर जोड़ा गया। संस्कृति और आस्थाओं के प्रबन्ध को गतिशील बनाने हेतु राज्य सरकार की नवीन नीति में देवस्थान विभाग को पर्यटन कला और संस्कृति विभाग के साथ जोड़ा गया है। धार्मिक पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए अब देवस्थान विभाग भी पर्यटन कला एवं संस्कृति विभाग के समन्वय के साथ अपनी महत्ती भूमिका निभा रहा है।[7] पर्यटकों की आवाजाही के लिए इको फ्रेंडली सुविधा देना नितान्त आवश्यक है। इसके लिए राज्य सरकार ने अनेक योजनायें लागू की; साथ ही, इनके रखरखाव, जीर्णोद्धार के लिए धन राशि की व्यवस्था की गई। 1991 में पर्यटन हेतु राष्ट्रीय क्रियान्वन प्लान में धार्मिक पर्यटन के महत्व को स्वीकार किया गया तथा इन पर्यटन स्थलों पर आधारभूत सुविधाओं में सुधार करने के लिए योजना बनाई गई तथा बजट में इनके लिए धनराशि की व्यवस्था की गई।[8] राज्य के तीर्थस्थलों से सम्बन्धित सुचनाएं देवस्थान विभाग द्वारा तैयार की गई वेबसाइट www.rajasthandevasthan.com पर उपलब्ध है।

वैष्णव धर्म से अनुप्राणित नाथद्वारा की कला महामाया का चिन्मय विलास है। धर्म प्रधान विचारों की अभिव्यक्ति सत्य को उद्घाटित करके मानव मन के परम

सत्य का बोध कराती है। विनय, माधुर्य, सदाचार, कृष्ण की बाल लीलाएं, सुख एवं शांति धर्म के ही प्रतीक है। कला भारतीय विचार, धर्म, दर्शन एवं तत्वज्ञान का दर्पण है। आनन्द, तत्ववाद, कल्पनात्मक विस्तार और सांस्कृतिक परम्परा का प्रछन्न प्राधान्य यहाँ की धार्मिक कला में निहित है। कृष्ण विषयक चित्रों के अंकन में छन्द राग और रसानुभूति है।

''विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला परा।
लीयते परमानन्दे यायात्मा सा परा कला।।''

''यानी जिस कला की भोग में विश्रान्ति है, वह कला कला नहीं है, बन्धन है; परन्तु जिस कला का लक्ष्य परम तत्व की ओर ले जाकर आनन्दित कर है, वही कला, कला है।[9] मथुरा से प्रचारित पुष्टिमार्ग की धार्मिक मान्यता नाथद्वारा में विकसित होकर देश–विदेश में प्रचार–प्रसार पाने लगी। श्रीकृष्ण की लीलाओं एवं कृष्ण चरित्र पर आधारित चित्रांकन पर्यटकों को लुभाने के साथ ही आत्मसंतुष्टि के कारक बने। पुष्टिमार्ग में चित्राकंन को आध्यात्मिक महत्व मिला है क्योकि चित्रदर्शन से पुन्य की प्राप्ति होती है। श्रीनाथजी के वैभव वृद्धि के साथ ही अनुयायियों तथा दर्शनार्थियों की संख्या बढ़ी।[10] नाथद्वारा के चित्रों का सौन्दर्य अनुपम और निर्विकार है। मूलतः भारतीय सौन्दर्य–दृष्टि का मूलाधार ''भाव'' को माना जाता है। इस रूप में कृष्ण विषयक चित्रों की सौन्दर्यात्मक विचारधारा समाज में भाव सम्प्रेषण का साधन बनी। वहीं, कलाकारों ने अपने रचनात्मक चित्रों में धर्म के अंदरूनी रहस्यों और लक्षणों को सौन्दर्यात्मक विचारों के साथ निरूपित कर कला का गौरव बढ़ाया। धर्म ने कला को गौरव प्रधान किया और कला ने धर्म को अपना सौन्दर्य और अभिव्यक्ति के लिए साधन दिया। आनन्द अथवा सौन्दर्य की व्याख्या हमारी कला में धर्म के धागे को पहनकर किया गया है।[11] कलाकार का खास नजरिया, मूल्य व आस्थाओं को बरकरार रखना मात्र ही नहीं बल्कि उनका कलाकृतियों में रूप और विषय को काल्पनिक आधार भी प्रस्तुत करने का रहा है। उन्होंने कला को धर्म प्रधान ज्ञान का स्त्रोत माना है। उनके धार्मिक ज्ञान को व्यावहारिक ज्ञान से संगम करके उन्हें कलाकार के साथ अभियन्ता भी बना दिया। मसलन, नाथद्वारा की कलाकृतियों के रूप या बिम्ब, कलाकार की रुचि, उसके सामाजिक माहौल और तीर्थाटन से जुड़ी धार्मिक मान्यता है।

तीर्थाटन और कला का सामाजिक महत्व

तीर्थाटन को एक सांस्कृतिक विचारधारा का प्रघटन माना जाता है। मानव समुदाय तीर्थाटन में विश्वास रखता है। पर्यटक अपने निवास से बाहर के सामाजिक वातावरण और विचारधारा से अनभिज्ञ रहता है। उसका परिचय तीर्थाटन के रूप में एक सामाजिक वातावरण से होता है। वह उसमें आस्था, विश्वास के साथ–साथ उस स्थल के बारे में जानने की जिज्ञासा रखता है। प्रायः यह देखा जाता है कि तीर्थाटन राष्ट्रीय समझबूझ बढ़ाने में मदद देता है। विदेशी पर्यटकों पर भी गंतव्य स्थल व देश के तीर्थाटन और सांस्कृतिक विचारधारा का प्रभाव पड़ता है। इतना ही नहीं, वह हमारे देश की कला और संस्कृति के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के साथ–साथ अतिथि देव भवः से रूबरू होता है। वास्तव में नाथद्वारा की कला और तीर्थाटन को स्थानीय संस्कृति का संरक्षण व उत्सावर्धक माना जाता है।

नाथद्वारा की कला व संस्कृति में मानवीय और आध्यात्मिक पक्ष की अभिव्यंजना है। यहाँ साहित्य, धर्म, दर्शन और भोतिकवादी विचारधारा एवं लौकिक जीवन के उज्जवल पक्ष निहित दिखाई देते हैं। कला और संस्कृति का सम्बन्ध उन मान्यताओं, परम्पराओं, विचारों से भी है जिसमें संस्कृति और समाज के गहरे सांस्कृतिक सरोकार है। नाथद्वारा की संस्कृति लोक का आलोक लिए हुए समाज की विशिष्ट परम्पराओं के प्रवाहमान से प्रवाहित है। जिवाडिन जोविएक (Zivadin Joviac) का कहना है कि पर्यटन एक सामाजिक प्रवाहन है, जो आराम, घरेलू चिन्ता से मुक्त करता तथा सांस्कृतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि करने के उद्देश्य से जुड़ा होता है।[12] नाथद्वारा की कला में सामाजिक, काल्पनिक तथा आध्यात्मिक पक्षों की सृजना निहित है। भारतीय आध्यात्मिक ज्ञान, दर्शन तथा साहित्य की झाँकी निश्चित रूप से कलाकृतियों में देखी जा सकती है। इस रूप में कला समाज की बुनियादी और आस्थावान विचारधारा के आदर्श रूप को भी दर्शाती है। कला का सृजनात्मक भाव धर्म से प्रेरित तो है ही साथ में उसके गूढ़ रहस्य को समाज में एक आदर्श के रूप में स्थापित किया है। समाज उस आदर्श पर अपनी विश्वास और श्रद्धा रखता है। परम्परागत तौर पर उन धार्मिक आख्यानों पर आधारित सृजन कार्य कला परम्परा के स्वरूप को दृष्टिगोचर करता है।[13] इसलिए यह कहना समिचीन प्रतित होता है कि रचनाकार सृजन के विभिन्न पक्षों को आत्मशक्ति और आस्थावान विचारों के साथ रचता रहा एवं कला को सामाजिक समरूपता और भावनाओं से जोड़े रखा।

नाथद्वारा कला की चित्रमय भाषा कलाकार के अंतर्जगत को उजागर करती है; बाह्यजगत् की विलक्षण विकृति और सौन्दर्य को वाणी देती है। कला रचनाओं में न सिर्फ कला का धार्मिक इतिहास समाहित है वरन उन ऐतिहासिक और काल्पनिक विचारधाराओं को भी दर्शाती है जो सदियों से समाज में प्रचलित मानवीय विचारों और मानव मन में आस्था की बुनियादी और आर्दशवादी रूप का ताना बाना बनी हुई है। नयी धारणाओं व आस्थाओं को व्यक्त करने के लिए–कला ने ऐसी कल्पना–सृष्टी की जिसने वैचारिक आकृतियों की सहायता से समाज की बुनियादी धारणाओं व सर्वमान्य आदर्शो को प्रस्तुत किया है............।[14] कलाकार बाजारवादी जिज्ञासा के मुताबिक कला का सृजन कर रहा है जिससे कला एक अर्द्धरुमानी, अर्द्ध–व्यावसायिक पेशा बनती जा रही है। कलाकृतियों में कृष्ण के विविध काल्पनिक रूप धर्म के प्रचार–प्रसार के मकसद से बनाये जाते रहे जिसका समाज में बड़ा महत्व है।

तीर्थाटन और कला का आर्थिक महत्व

प्राचीन काल से भारतीय समाज में दर्शनार्थी तीर्थ पर्यटन स्थल की यात्रा बहुउद्देश्य विचारों के साथ करते रहे हैं। दर्शनार्थी धार्मिक यात्रा के मूल में अपने आस्थावान ईष्ट देवी–देवताओं को प्रसन्न करना, मनोकामना पूर्ण करना, संकट के समय अपनी और

सहपरिवार की रक्षा करना, ऐसी अनेक फल प्राप्ति की इच्छा के तहत तीर्थ स्थल के लिए प्रोत्साहित होता है। कृष्ण भक्ति आन्दोलन के कारण नाथद्वारा के लागों में माधुर्य भावना का आकर्षण बढ़ने के साथ–साथ यह स्थल पर्यटन उद्योग के रूप में प्रचारित होने लगा। तीर्थ एवं पर्यटन आपस में घनिष्ट रूप से सम्बन्धित है। पर्यटन उद्योग विशेष रूप से तीर्थस्थलों के लिए बहुत बड़ी संख्या में ''स्थानीय पर्यटकों'' को आकर्षित करता है। तीर्थ पर्यटन यात्रा के प्रोत्साहन में विशेष रूप से सहायक रहे।[15] आर्थिक पक्ष को बढ़ावा देने के लिए तीर्थाटन को इको–फ्रेन्ड्ली सुविधा से जोड़ा गया।

तीर्थाटन और कला पर्यटन के विभिन्न पहलुओं से जुड़ी होती है। परिवहन, दैनिक उपयोग में आनी वाली वस्तुएँ, होटल, रेस्टोरेण्ट, टैक्सी, यात्रा अभिकर्ता, बाजार में विविध दुकानें और दुकानों में श्रीनाथजी से सम्बन्धित विविध सामग्री, विविध कलाकृतियाँ नाथद्वारा में देखने को मिलती है। यहाँ स्थानिय लोग ही नहीं बल्कि देश–विदेश से भी पर्यटक और दर्शनार्थी सांस्कृतिक विचारों और कला से रूबरू होने आते हैं। पर्यटकों के द्वारा यहाँ किये जाने वाले व्यय से लोगों को रोजगार मिलता है। निःसंदेह, तीर्थाटन से उद्योग को बढ़ावा मिलता रहा है। यहाँ के कलाकार श्रीनाथजी से सम्बन्धित अनेक छोटी–बड़ी कलाकृतियाँ बनाते हैं। श्रीनाथजी के पिछे सज्जा के रूप में लगाई जाने वाली पिछवाई भी स्थानीय दुकानों पर उपलब्ध है। देशी–विदेशी पर्यटक यहाँ से सामान खरीदता है और सेवाओं का उपभोग करने के साथ वह धन का व्यय करता है। यह ही हमारे लिए अदृश्य निर्यात उद्योग तीर्थाटन का परिचय एवं महत्व है।

तीर्थाटन अप्रत्यक्ष रूप से लोगों के लिए रोजगार सृजन का कार्य करता है। पर्यटकों के आने से उद्योगों को बढ़ावा मिलने के साथ–साथ मार्केट और पर्यटकों की मूलभूत आवश्यकता का विस्तार होता है। मुख्यतः 'पर्यटन' अर्थशात्र से सम्बधित शब्द है जो कि एक उद्योग का द्योतक है। यह एक आर्थिक क्रिया है। अन्य आर्थिक क्रियाओं की तरह इससे मांग की उत्पत्ति होती है तथा अन्य उद्योगों के लिए मार्केट प्रदान करती है।[16] अतएव पर्यटन से सम्बधित वे समस्त क्रियाएं जो पर्यटकों की मांग के मुताबिक उद्योगों को बढ़ावा देती है। उनसे स्थानीय लोगों और कलाकारों को रोजगार मिलता हैं साथ ही धन का अर्जन भी होता है।

नाथद्वारा की कला

नाथद्वारा में कलाकार पीढ़ियों से भारतीय संस्कृति में प्रचलित वल्लभ सम्प्रदाय की विचारधारा को अपनाकर नित–नवीन रूपों के साथ कला का सृजन करते रहे हैं। इतना ही नहीं, वे धार्मिक ग्रंथों, स्फुट पदों और सामाजिक विचारधारा को आधार बनाकर अपने कलागत अनुभवों को सुविधानुसार रचते रहे। मध्यकाल में कला राजाश्रय होने से कलाकार उनकी आज्ञा के मुताबिक कला का सृजन करते थे। उस समय कला राजा–महाराजाओं और जागीरदारों की बपौती थी। परन्तु आज का कलाकार कला रचना के लिये स्वतंत्र हैं एवं पूँजीवादी मांग के मुताबिक संघर्षरत हैं। हालांकि, कलाकार अपने व्यक्तिगत भावों, विचारों और अवधारणाओं तथा सौन्दर्यात्मक विचारों के अनुरूप कला का सृजन करता है। परन्तु, बाजारवादी जिज्ञासा और धन लाभ की लालसा उसके अर्न्तमन से प्रस्फुटित विचारों को विचलित कर देती है। कलाकारों के इस जद्दोजहद से जहाँ पारम्परिक कला की मौलिकता का ह्रास होता गया वहीं नित–नवीन कलागत तकनीकी और वैश्विक विचारधारा के साथ कला में नवीनता भी देखी गई है। कलाकारों ने कृष्ण लीलाओं को भित्ति, कपड़े, कागज, हार्डबोर्ड और विभिन्न प्रकार के प्लाई बोर्ड पर जल रंग, तेल रंग और एक्रेलिक रंगों से रूपायित किया। इतना ही नहीं, इन्होंने सचित्र ग्रंथों की रचना की जिनमें कृष्ण विषयक चित्रों की बहुलता देखी जाती है। कृष्ण की बाल लीलाओं, राधा कृष्ण के प्रेम प्रसंग, नन्द की विदाई, विरहणी राधा, होली, शृंगार, क्रीड़ा, गोचारण और कृष्ण के आध्यात्मिक रूपों आदि विषयगत चित्र नाथद्वारा शैली की अनुपम निधि है। कृष्ण चरित्र के विलक्षण रूपांकन देश–विदेश के पर्यटकों, धार्मिक उपासकों और सुन्दरता के रुचिकर लोगों को निरन्तर आकर्षित करते रहते हैं।

13वीं शती से कृष्ण भक्ति आन्दोलन के कारण भारतीय समाज में माधुर्य भावना का प्रचार–प्रसार होने लगा। राजस्थान के मेवाड़ में श्रीमद्भागवत एवं 12वीं सती में जयदेव कवि द्वारा रचित गीतगोविन्द ने सचित्र ग्रंथों की परम्परा से कृष्ण चरित्र के विविध रूपों को रचा जाने लगा। राधा कृष्ण की अलौकिक एवं मनोहारी शृंगारिक लीलाओं और प्रेम–प्रसंग से कला में विभिन्न रसात्मक विचारों व भावों की अभिव्यक्ति होने लगी।

राजस्थान में वल्लभ सम्प्रदाय का प्रत्यक्ष प्रभाव नाथद्वारा में श्रीनाथजी के स्वरूप की स्थापना से माना जाता है। मुगलकालीन शासक औरंगजेब ने अकबर कालीन कला और संस्कृति की उदारतावादी विचारधारा के प्रति अपनी अनुदार नीति बरतने लगा। हिन्दू पूजाघरों, मन्दिरों, धार्मिक स्थलों की तोड़फोड़ की आज्ञा और कट्टर बरताव से समाज में तहलका मच गया। ब्रज प्रदेश के विशाल मन्दिरों के कुछैक पूजारियों ने वहाँ की पूजनीय मूर्तियों को संरक्षित रखने हेतु आयोजन करने लगे। धार्मिक आस्था और विचारधारा को बरकरार रखने के लिए वे इधर–उधर भटकने लगे। औरंगजेब जैसे बादशाहों की अनुदार नीति के कारण मुगल साम्राज्य के सीधे आधिपत्य वाले नगरों से आचार्यो ने सुरक्षा की दृष्टि से अपनी आराध्य मूर्तियों को हटाकर देशी रियासतों के राजाओं के संरक्षण में ले जाना श्रेयस्कर समझा।[17] गोवर्धन पर्वत पर स्थित वल्लभ संप्रदाय वालों के प्रमुख मन्दिर के श्रीनाथजी के विग्रह को लेकर वहाँ के गोस्वामी श्री दामोदर जी तथा उनके चाचा गोविन्द जी 30 सितम्बर, 1669 को गोवर्धन से निकल पड़े।[18] वे औरंगजेब की रीति–नीति से छिपते–छिपाते राजस्थान में मूर्ति स्थापित करने के लिए इधर–उधर भटकते रहे, लेकिन किसी राजा–जन ने स्वीकार नहीं किया। अंत में महाराणा राजसिंह ने श्रीनाथजी की इस मूर्ति का मेवाड़ में सहर्ष स्वागत किया और 10 फरवरी, 1672 ई. के दिन सीहाड़ गाँव में भव्य समारोह के साथ इस मूर्ति की स्थापना की गई, जो तब से ही नाथद्वारा कहलाने लगा।[19] नाथद्वारा में वैष्णव सम्प्रदाय के अविर्भाव तक ज्यों–ज्यों कृष्णोपासना

का विस्तार होता गया त्यों–त्यों धार्मिक चित्रों की भी वृद्धि होती गई।

मध्यकाल में वल्लभ सम्प्रदाय की नूतन धारा के कारण भारत में नाथद्वारा का कृष्ण भक्ति भावना और धार्मिक स्थल के रूप में महत्त्व बढ़ने लगा। यह स्थान प्रसिद्ध ही नहीं हुआ बल्कि पावन तथा भक्तों के आकर्षण और सौन्दर्य के रुचिकर लोगों का केन्द्र भी बन गया। इतना ही नहीं, राधा–कृष्णोपासक भावुक जनों ने महिमा मण्डित मथुरा मण्डल के आध्यात्मिक रूप की कल्पना कर उसे गोलोक का प्रतीक मानने लगे। भगवान कृष्ण ने अपनी आनन्दमयी सरस लीलाओं और लोकोपकारी क्रिया–कलापों से भारतीय जन–जीवन को जितना प्रभावित किया उतना अन्य किसी महापुरूस ने नहीं। यही कारण है कि उनको पुरूषोत्तम ही नहीं वरन् परब्रह्म कहा गया।[20] उन्होंने अपनी सरस और मनमोहित बाल लीलाओं से सभी को अचम्भित कर दिया। परमसत्य और सुन्दरता का प्रतिरूप श्री कृष्ण का कलामय जीवन और धार्मिक भावना का प्रभाव अथ से इति तक रहा। प्रत्येक धर्म, सम्प्रदाय एवं कला का मुख्य उद्देश्य परमात्मा के रहस्य को ढूँढ़ना है, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान, सृष्टि निर्माता, सृष्टि पालक और सृष्टि विध्वंसक है। वही परमसत्य, सुन्दर एवं सौन्दर्य युक्त भी है।[21] श्री कृष्ण की स्नेहशीलता, उदारता, सौहार्द्र से परिपूर्ण सेवा–समर्पण, माधुर्य भावना, समन्वय, मित्रता और आम जन–जीवन से सामन्जस्य जैसे आदर्शों से परिपूर्ण इनका जीवन समाज को नई दिशा प्रदान करता है। निःसंदेह, कृष्ण–चरित्र का दिव्य रूप कला का ही प्रमाण है, जो उनके लोकोपकारी जीवन में विद्यमान है।

मध्यकालीन कृष्ण भक्ति की अक्षुण विचारधारा और माधुर्य भावना के कारण कला में नवीनता का समावेश होने लगा। कृष्ण चरित्र की अलौकिक लीलाओं ने कला सृजन के क्षैत्र में जैन एवं गुजरात शैली की जकड़न को समाप्त कर गतिमान रेखाओं से युक्त रंगीन और ऐन्द्रियक बना दिया, जिससे राजस्थानी कला में मेवाड़ स्कूल को एक नयी दृष्टि मिली। प्रायः यह भी माना जाता है कि मथुरा–वृन्दावन से वैष्णव सम्प्रदाय के गोस्वामियों के साथ अनेक चित्रकार नाथद्वारा आये, जिन्होंने श्रीनाथजी के अद्वितीय स्वरूपों को रूपायित किया। भारतीय समाज में ब्रज एवं मेवाड़ की सांस्कृतिक परम्परा के समन्वय से नाथद्वारा शैली अपनी मौलिकता के साथ विकसित हुई और यह स्थल भक्तों का आराध्य केन्द्र बन गया। कृष्ण भक्ति और कृष्ण के श्रंगारिक लीलाओं के अलंकृत रूपों का आकर्षण भक्तों को श्रद्वा से नतमस्तक कर देता है वहीं प्राकृतिक दृश्यों के साथ राधा–कृष्ण का मनोरम चित्रण कला प्रेमियों को आकर्षित करता है। कृष्ण भक्त कवियों तथा अष्ठछाप के कीर्तनकारों ने गिरि–गोवर्धन के प्रति अत्यन्त श्रद्वा व्यक्त की है। उन्होंने इसे राधा कृष्ण की केलि–क्रीड़ाओं का केन्द्र माना, इनकी भव्य छटा का अनुपमेय वर्णन किया तो भला चित्रकार इसकी अद्वितीय सुन्दरता को मूर्त रूप देने में कैसे वन्चित रहता ? रसिक जनों को गिरिकन्दराओं में राधा–कृष्ण का युगल स्वरूप बरबस आकर्षित करता है तो भक्त श्रद्धा से नत हुए बिना नहीं रहता।[22] श्रीनाथजी के प्राकट्य एवं रसमय लीलाओं तथा अष्टयाम की सेवा पूजा के रूपांकन भित्ति व कागज और कपड़े पर अंकित किए गये। श्रीमद्भागवत, सूरसागर, बाल गोपाल स्तुति, गीत गोविन्द, कवि प्रिया, रसिक प्रिया आदि सचित्र ग्रंथों के साथ कृष्ण लीलाओं का चित्रण होता गया। परम्परागत शैली में चित्रित श्रीमद्भागवत का श्लोकबद्ध चित्रण संग्रहीत है जिसे यहाँ के ख्याति प्राप्त चित्रकार श्री शुकदेव एवं श्री घासीराम शर्मा ने अपने सहयोगियों को उचित मार्गदर्शन देकर तैयार करवाया था। यह भागवत् सम्बन्धि चित्रों की बहुत बड़ी थाती है तो चित्रकला की अमूल्य निधि भी।[23] यहाँ रागमाला, बारहमासा, कृष्ण–चरित्र एवं ब्रज और राजस्थान के सांस्कृतिक, सामाजिक जीवन के चित्रों की प्रधानता है। अधिकांश चित्रों में धार्मिक परम्पराओं एवं ब्रज की पावन भूमि का प्रभाव यथा प्रवाहित पतित पावन यमुना का प्रवाहमान शीतल सलिल में खिले कमल पुष्प और गुच्छ, वृक्षों का चित्रण एवं सुन्दर, सुशील मनोहारी मोर और पवित्र गायों का अंकन अवश्य मिलता है। नाथद्वारीय संस्कृति एवं कला चेतना का शुभारम्भ ब्रज और राजस्थानी संस्कृति का मिश्रित रूप ही है। यहाँ धार्मिक परम्पराओं के साथ चित्रांकन का सरित प्रवाह तीन शताब्दियों तक असंख्य चित्रकारों के जूझने के पश्चात् वर्तमान निखरे रूप में हमारे सम्मुख है। इसके मूल में ब्रज संस्कृति और वल्लभ दर्शन ही रहे हैं।[24] हालांकि, यह भी गौरतलब है कि नाथद्वारा के राजा–महाराजाओं और जागीरदारों का वास्तु–शिल्प एवं चित्र सृजन के उन्नयन में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। कृष्ण के प्रति अनुराग और प्रेमालाप से कला में लौकिक विषयों का चित्रण होने लगा। इससे कला सृजन का दायरा बढ़ा ही, साथ ही विषयगत विविधता से नित–नवीन रूपों में भक्ति और प्रेम की रसानुभूति होने लगी। वैष्णवों की भक्ति और प्रेम की इन भावनाओं को प्रदर्शित करने के लिए चित्रकला के सिद्वान्तों और विषयों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। कृष्ण भक्ति विषयक चित्र बनाने की एक परिपाटी चल पड़ी।[25] श्रीनाथजी के कलात्मक रूपों और सांस्कृतिक परम्परा का समाज में बड़ा महत्व है। धार्मिक और पारम्परिक रीति के अनुसार नाथद्वारा के मन्दिर में श्रीनाथजी की सेवा में यमुना जल काम में लिया जाता है, जो मथुरा से आज भी मंगवाया जाता है।

श्रीनाथजी की श्रृंगारिक लीलाओं के दार्शनीक रूपों को सजाने की पारम्परिक विचारधारा रही है। इनके स्वरूप के पीछे साज–सज्जा के लिए कपड़े पर जो पर्दे बनाये जाते हैं, उन्हें पिछवाई कहा जाता है। कपड़े पर सांस्कृतिक विचारों के तहत पारम्परिक तरीके से बनने वाली कला को पिछवाई के रूप में पहचान मिली जो नाथद्वारा की मौलिक देन है। नाथद्वारा में लघु चित्र एवं पिछवाइयाँ बनी। पुष्टिमार्गीय मन्दिरों में अवसरानुकूल चिन्तराम की पिछवाइयाँ स्वरूपों के पीछे धारण करवाते हैं। नाथद्वारा की चित्रांकित पिछवाई कला अपने आप में अनोखी है। इसने विश्वव्यापी ख्याति अर्जित की है।[26] मूलतः पिछवाइयाँ श्रीनाथजी के विभिन्न उत्सवों तथा कृष्ण लीलाओं के विषयगत रूपों के लिए तैयार की जाती है। संस्कृति में सदियों से चली आ रही यह पारम्परिक विचारधारा नाथद्वारा में आज भी बरकरार है। मन्दिरों में

भगवान की झांकी की शोभा के लिए बड़े–बड़े पटचित्र बनाने की प्रथा नाथद्वारा में परम्परा रही है, अतः कृष्ण लीला संबंधी ये पिछवाइयाँ या पड़ व्यावसायिक रूप से भी बहुलता से बनी है। श्रीनाथजी की विभिन्न झांकियों तथा रासलीला इन पिछवाइयों के प्रमुख विषय रहे हैं।[27] प्रायः यह भी माना जाता है कि श्रीनाथजी की पुरानी पिछवाइयाँ पुष्टि–सम्प्रदाय के मन्दिरों, संग्रहालयों एवं कला–मर्मज्ञों और कला प्रेमियों के पास संरक्षित है। वर्तमान में पिछवाइयों का निर्माण कुशल व अकुशल कलाकारों द्वारा बहुत ज्यादा होने लगा है, जिन्हें होटलों, सार्वजनिक भवनों और आवासों में लगाया जाता है। करीब तीन सौ वर्ष पुरानी यहाँ की कला में पिछवाई व कागज पर लघु चित्रों के साथ–साथ भित्ति चित्रण के ऐसे साक्ष्य मिलते हैं जिनमें कलाकारों की सृजनात्मकता और प्रयोगवादिता दृष्टिगोचर होती है। इस धार्मिक चित्रशैली से जुड़कर रचनात्मक कार्य करने वाले नाथद्वारा के कलाकारों में सुखदेव, घासीराम शर्मा, नरोत्तम नारायण शर्मा, बी.जी. शर्मा, इन्द्र शर्मा, घनश्याम शर्मा, खूबीराम, आदि प्रमुख हैं। उन्होंने शैलीगत चित्रण कर आकृतिमूलक सौन्दर्य और भाव प्रवणता का समावेश किया।

मेवाड़ प्रदेश में राजा–महाराजाओं के सानिध्य में भित्ति चित्रांकन की परम्परा अग्रसर होती रही। यहाँ प्रमुख रूप से राजमहलों, जागीरदारों की हवेलियों, दुर्ग एवं निजी भवनों तथा मन्दिरों के भित्ति चित्रों में सांस्कृतिक सरोकार निहित दिखाई देते हैं। जिनमें मुख्यतः उदयपुर क्षेत्र के विभिन्न स्थलों पर तो चित्रण हुआ है, परन्तु नाथद्वारा के महुवा वाला अखाड़ा, देवगढ़ आदि स्थानों के भित्ति चित्रों में कृष्ण लीलाओं, कृष्ण व गोपियों की होली के साथ ही श्रृंगार के प्राचीनतम चित्र भारतीय संस्कृति की अकूत संम्पदा को दर्शाती हैं। दीपावली, होली तथा विशिष्ट उत्सवों पर मन्दिरों की दीवारों पर भित्ति चित्र, कागज व कपड़े पर बने लघु चित्र में श्रीनाथजी की लीलाओं का पारम्परिक चित्रण ने नाथद्वारा शैली की निजी विशेषताओं को अक्षुण्ण बनाए रखा। लोक कला के प्रभाव से इस कला में सरलता और गतिशीलता का समावेश होता गया। श्रीनाथजी तथा कृष्ण लीला का जो अंकन इस शैली के अन्तगर्त हुआ उसकी खास बात यह भी है कि इसमें स्थानीय लोक शैलियाँ भी प्रभावी ढ़ंग से आयी है। रंगों से भरपूर आनुपातिक एवं अलंकृत ऐसे चित्र गोस्वामियों तथा तिलकायतों की परम्परा का सार्थक प्रतिनिधित्व करते हैं।[28] धार्मिक अनुष्ठानों के आधार पर वर्ष–पर्यन्त उत्सवों की झांकी के चित्रण की पारम्परिक कला मूलतः चौबीस उत्सव के अतिरिक्त अन्नकूट, छप्पन भोग, कलियों की हट्टी, बंगले के उत्सव आदि का बहुतायत रूपांकन होता गया। नाथद्वारा शैली में श्रीनाथजी के श्रृंगार और भोग में छोटी से छोटी वस्तु का अंकन अनिवार्य रहा है। कृष्णावतार बाल रूप श्रीनाथजी को जिन वैभवपूर्ण साधनों से रिझाया जाता है उनमें संगीत और चित्रकला प्रमुख रही है।

मेवाड़ प्रदेश के महाराणा संग्राम सिंह द्वितीय वल्लभ सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनका काल (1710–1734 ई.) में धर्म प्रधान चित्रों की रचना अधिक हुई। इनके वंशजों ने चिरकाल तक सांस्कृतिक विचारों के अनुरूप कृष्ण चरित्र विषयवस्तु को प्रमुखता दी। इस काल में सूर एवं बिहारी द्वारा रचित पदों पर चित्रकारों ने चित्रों का निर्माण किया, जिसमें चित्रकार कविराज जगन्नाथ का नाम उल्लेखनीय है।[29] केशवकृत रसिक प्रिया को आधार बनाकर चित्रकारों ने मनोरम चित्रण किया। मेवाड़ शैली में वल्लभ सम्प्रदाय के प्रभाव से सूर सागर की पदावलियाँ और बिहारी सतसई में बिहारी के मनोत्पन भाव मुखरित हुए है। सूर सागर एवं भागवत के चित्रों में पदावलियों के साथ–साथ नन्द बाबा कृष्ण जन्म पर गोदान देते हुए, गायों का पूजन करते हुए, ग्वालों की पगड़ी बंधवाते हुए, वस्त्राभूषण बांटते हुए, गाते बजाते ग्वालाबाल, ब्रजवासीगण दही–दूध की होली खेलते हुए, अन्तः पुर वासी स्वजन, बधाईयाँ गाती बृजवनिताएँ, प्रसूतिगृह में यशोदा और उनके सम्बन्धित अनेक दृश्यों का चित्रकार ने एक ही फलक पर बहु आयामी अंकन किया है, जो मेवाड़ के चित्रकारों की कार्यकुशलता के अद्‌भुत उदाहरण हैं।[30] चित्रकार ने धार्मिक चित्रों को एक ही फलक पर दृश्यजन्यलघुता का अच्छा प्रयोग करते हुए घटनाओं का विवरण इस प्रकार किया है कि दर्शक आसानी से एक भाव के बाद दूसरे भाव का रसास्वादन कर सकता है। भगवान कृष्ण के क्रीड़ारत चित्रों में चित्रकार ने ब्रजवासी बनकर अपने विचारों की भावानुरूप रचा है। भक्त कवियों ने शब्दों को धार्मिक विचारों में बांधकर सुगम शब्दावलियों द्वारा कृष्ण की महिमा को मंडित किया वहीं चित्रकारों ने उसे रेखा, रंगों और तुलिका से रूपायित कर अमरत्व प्रधान किया।

17वीं से 19वीं शती के चित्रों में कृष्णोपासना की बहुलता रही जिसमें माता यशोदा, नन्दगोपाल, गोपियाँ तथा कृष्ण का दिव्य रूप आदि का चित्रण विशेष है। कृष्ण के बालरूपों के फलस्वरूप स्त्रियों की आकृति में प्रौढ़ावस्था, शारीरिक स्थलता और भावों में वात्सल्य की झलक दर्शनीय है। पुरूषों में गुसाईयों के पुष्ट कलेवर नन्द और आमजन तथा बाल गोपालों के भावानुभाव रूपांकन नाथद्वारा शैली में विशेष हुए हैं। कलाकारों ने अनेक ग्रंथ चित्रों में कृष्ण लीलाओं को अंकित किया। कृष्ण की लीलाओं को लेकर 17वीं से 19वीं शताब्दी में कई चित्रित ग्रन्थ तैयार किये गये हैं जो उदयपुर के तथा कोटा के संग्रहालयों में सुरक्षित है।[31] संस्कृति में प्रचारित ग्रंथों के अनुरूप कृष्ण की विविध लीलाओं का चित्रण करने की प्रथा नाथद्वारा में आज भी बरकरार है।

19वीं शती से नाथद्वारा शैली के चित्रों की व्यापारिक बहुलता बढ़ने के कारण रेखाओं में भदेसापन, रंग निरूपण में बिखराव आने लगा। फोटोग्राफी के प्रभाव से नाथद्वारा शैली की मौलिकता का ह्रास होने लगा। कलाकार एक ओर पारम्परिक और सांस्कृतिक मान्यताओं के साथ कला का सृजन कर रहे हैं वहीं, दूसरी ओर वैश्विक कलाधारा के प्रभाव से बदलती हुई सामाजिक मान्यताओं और स्वच्छन्दता पूर्ण परिवर्तन के साथ कला के रचनात्मक कौशल को अन्जाम दे रहे हैं। इतना ही नहीं, प्रयोगवादी नजरिये और धन की मीमांषावृत्ति के कारण कला सृजन का आग्रह प्रबल होता जा रहा है। इससे कला रचना में धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यता से सम्बन्धित पुष्टि मार्गीय इतिहास का रूपांकन मात्र

विषयगत रूपों में देखे जाते हैं। बावजूद, श्रीनाथजी के रूप –स्वरूप आकारों और पिछवाइयों के वैश्विक व्यापार के कारण लगभग 35 कुटुम्बों के पुश्तैनी कलाकार आज भी नाथद्वारा शैली में विभिन्न माध्यमों में चित्रांकन कर जिविकोपार्जन कर रहे हैं। अतः नाथद्वारा के बाजार में कुशल व अकुशल कलाकारों द्वारा रचित अनेक प्रकार की कलाकृतियाँ और पिछवाइयाँ देखने को मिलती हैं।

निष्कर्ष

नाथद्वारा की चित्रण परम्परा सांस्कृतिक विचारों और कृष्णोपासना के प्रचार–प्रसार के समानान्तर ही विकसित हुई जिसके प्रमाण हमें प्राप्य ग्रन्थों एवं अवशेषों से मिलते हैं। नाथद्वारा के अतिरिक्त मेवाड़ के विभिन्न ठिकानों उदयपुर, देवगढ़ एवं मन्दिरों आदि स्थानों का कला के संरक्षण और संवर्द्धन में महत्वपूर्ण योगदान रहा। यहाँ भित्ति चित्र, लघु चित्र एवं पिछवाईयों की पारम्परिक विचारधारा का प्रभाव रहा। कला में कृष्णोपासना, कृष्ण चरित्र, कृष्ण लीलाओं और क्रीड़ाओं के चित्रों की विविधता परिलक्षित होती है। वस्तुतः रचनाकारों के रचनात्मक रूपाकारों और विषयगत भावों में सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्ति के साथ–साथ सांस्सारिक विचारों का दर्शन है। कला के नियामक कारकों की पूर्ति के अनुसार संस्कृति में पल्लवित वल्लभ सम्प्रदाय की उत्प्रेरणा से सृजन–धर्म का निर्वाह हुआ है यह निर्विवाद रूप से सत्य को दर्शाता है। उपयुक्त तथ्यगत रूप से यह स्पष्ट होता है कि नाथद्वारा की कला में सौन्दर्यात्मक और आध्यात्मिक रूपों तथा सांस्कृतिक विचारों के अद्भुत समन्वय से कला का प्रचार–प्रसार हुआ। इस कारण, हिन्दू धर्म के अनुयायी और पर्यटकों की आवाजाही नाथद्वारा में निरन्तर बनी रही। कमोबेश, यहाँ के तीर्थाटन से उद्योगों को बढ़ावा मिला साथ ही इससे जड़े लोगों को रोजगार के अवसर भी सुलभ हुए।

अतः नाथद्वारा का जन–जीवन धार्मिक आस्थाओं एवं मान्यताओं के ताने बाने से गूथा हुआ है। श्री राधे–राधे की आश्रय स्थली में शांति और सुकून की तलास, तीर्थ से पून्य कमाने की चाह, धार्मिक आस्था एवं कलामय वातावरण से आनन्द के तहत पर्यटकों की यात्रा सार्थक होती रही। पर्यटन की यह परम्परा नाथद्वारा में आज भी कायम है। निःसंदेह, पर्यटकों के मन में यहाँ की कलाओं और धार्मिक आस्थाओं के प्रति विशेष प्रेम एवं आकर्षण रहा हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. *बंसल, ड़ॉ. सुरेश चन्द्र :– पर्यटन एवं यात्रा प्रबन्धन आधारभूत सिद्वान्त, मीरा प्रकाशन, सहारनपुर, पृष्ठ 152*
2. *व्यास, ड़ॉ. राजेश, कुमार :– सांस्कृतिक पर्यटन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, पृष्ट 150*
3. *सिंह, जगदीश :–पर्यटन व्यवसाय एवं विकास, तेज प्रकाशन, 98, शक्ति भवन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ट 35*
4. *वही, पृष्ट 25*
5. *वही, पृष्ट 97*
6. *वही, पृष्ट 46*
7. *व्यास, ड़ॉ. राजेश, कुमार :– सांस्कृतिक पर्यटन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, पृष्ट 154*
8. *बंसल, ड़ॉ. सुरेश चन्द्र – पर्यटन एवं यात्रा प्रबन्धन आधारभूत सिद्वान्त, मीरा प्रकाशन, सहारनपुर, पृष्ठ 152*
9. *द्विवेदी, ड़ॉ. प्रेम शंकर, ड़ॉ. मनीष कुमार द्विवेदी :– भारतीय कला साहित्य एवं संस्कृति, कला प्रकाशन, बी. 33/33 ए–1, न्यू साकेत कालोनी, बी. एच. यू. वाराणसी–5, पृष्ट 34,35*
10. *चौहान, सुरेन्द्र सिंह :– राजस्थानी चित्रकला, राहुल पब्लिसिंग हाऊस दिल्ली, पृष्ट 62*
11. *द्विवेदी, ड़ॉ. प्रेम शंकर, ड़ॉ. मनीष कुमार द्विवेदी :– भारतीय कला साहित्य एवं संस्कृति, कला प्रकाशन, बी. 33/33 ए–1, न्यू साकेत कालोनी, बी. एच. यू. वाराणसी–5, पृष्ट 36*
12. *बंसल, ड़ॉ. सुरेश चन्द्र :– पर्यटन एवं यात्रा प्रबन्धन आधारभूत सिद्वान्त, मीरा प्रकाशन, सहारनपुर, पृष्ठ 02*
13. *कपूर, ड़ॉ. बिमल कुमार :– पर्यटन भूगोल : विश्व भारती पब्लिकेशन्स, 4378/4B, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ट 218*
14. *गुप्त, प्रो रमेशचन्द्र : कला–इतिहास के आयाम, उर्मिला पब्लिकेशन्स, दिल्ली, पृष्ठ 07*
15. *बंसल, ड़ॉ. सुरेश चन्द्र :– पर्यटन एवं यात्रा प्रबन्धन आधारभूत सिद्वान्त, मीरा प्रकाशन, सहारनपुर, पृष्ठ 149*
16. *सिंह, जगदीश –पर्यटन व्यवसाय एवं विकास, तेज प्रकाशन, 98, शक्ति भवन, दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ट 31*
17. *सम्पादक : नीरज, डॉ. जयसिंह, डॉ. भगवती लाल शर्मा : राजस्थान की सांस्कृतिक परम्परा, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, अठारहवां संस्करण 2007, पृष्ठ 21*
18. *नीरज, डॉ. जयसिंह : राजस्थानी चित्रकला, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 31*
19. *वही, पृष्ठ 31, 32*
20. *सम्पादक – सुमहेन्द्र : आकृति 80, राजस्थान ललित कला अकादमी प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 27 एवं सम्पादक – चतुर्वेदी, त्रिलोकी नाथ, सत्य प्रकाश बंसल : राजस्थान वैभव, भारतीय संस्कृति एवं संवर्धन परिषद 3062 दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ट 87*
21. *द्विवेदी, ड़ॉ. प्रेम शंकर, ड़ॉ. मनीष कुमार द्विवेदी :– भारतीय कला साहित्य एवं संस्कृति, कला प्रकाशन, बी. 33/33 ए–1, न्यू साकेत कालोनी, बी. एच. यू. वाराणसी–5, पृष्ट 36*
22. *सम्पादक – चतुर्वेदी, त्रिलोकी नाथ, सत्य प्रकाश बंसल : राजस्थान वैभव, भारतीय संस्कृति एवं संवर्धन परिषद 3062 दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ट 85*
23. *सम्पादक – सुमहेन्द्र : आकृति 80, राजस्थान ललित कला अकादमी प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 30*
24. *सम्पादक – चतुर्वेदी, त्रिलोकी नाथ, सत्य प्रकाश बंसल : राजस्थान वैभव, भारतीय संस्कृति एवं संवर्धन परिषद 3062 दरियागंज, नई दिल्ली, पृष्ट 83*
25. *ड़ॉ. रामनाथ – मध्यकालीन भारतीय कलाएँ एवं उनका विकास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, पृष्ट 08*

26. चौहान, सुरेन्द्र सिंह – राजस्थानी चित्रकला, राहुल पब्लिसिंग हाऊस दिल्ली, पृष्ट 63
27. नीरज, डॉ. जयसिंह : कला का सृजनात्मक संसार, राजस्थान प्रकाशन, जयपुर–2, प्रथम संस्करण 1999, पृष्ठ 14
28. व्यास, ड़ॉ. राजेश, कुमार – सांस्कृतिक पर्यटन, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, पृष्ट 86
29. वशिष्ठ, डॉ. राधाकृष्ण : मेवाड़ की चित्रांकन परम्परा, यूनिक ट्रेडर्स, चौड़ा रास्ता, जयपुर, सन् 1984, पृष्ठ 06
30. वहीं, पृष्ठ 52
31. शर्मा, डॉ. गोपीनाथ : राजस्थान का सांस्कृतिक इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, दसवां संस्करण 2007, पृष्ठ 103